मां को अपने बच्चे से क्या मिलता है?

डॉ. बालसुब्रमण्यन

विज्ञान की घटनाओं को तरजीह देने वाली अनेक पत्रिकाओं में *द इकोनॉमिस्ट* मेरी पसंदीदा पत्रिका है। इसके एक अंक में अमेरिकन एसोसिएशन फॉर द एड्वांसमेन्ट ऑफ साइन्स (AAAS) की सेन फ्रान्सिसको में हुई वार्षिक बैठक में वैज्ञानिकों द्वारा प्रकट विचारों का समावेश किया गया है। इन बैठकों में तमाम हालिया घटनाओं और ताज़े शोध परिणामों (जिन्हें अभी तक व्यावसायिक विज्ञान पत्रिकाओं में भी छापा नहीं गया है) पर चर्चा होती है। यानी एक तरह से इन बैठकों में जल्द ही छपने वाली खबरों की पूर्व समीक्षा होती है।

ऐसी ही एक खबर ऑटोइम्यून डिसऑर्डर (स्वप्रतिरक्षण दोष) नाम के रोगों के एक वर्गके बारे में है। लगभग 70 रोगों को समेटे इस वर्ग के बारे में आश्चर्यजनक खबर यह है कि एक ही समूह के होकर भी इन रोगों के दो भिन्न उद्गम स्त्रोत हो सकते हैं। एक ज़रिया तो है अनुवांशिकता यानी मां-बाप से बच्चों को मिलना और दूसरा है इसके बिलकुल उलट। यानी मां-बाप का अपने बच्चों से पाना, वह भी उसके पैदा होने से पहले। *द इकोनॉमिस्ट* में इस स्त्रोत को 'विपरीत अनुवांशिकता' नाम दिया गया है। यह स्थिति किसी रोगजन्य कीटाणुओं के संक्रमण के कारण नहीं होती बल्कि यह एक शारीरिक क्रिया है जो भ्रूण की कोशिकाओं के मां के रक्त में जा मिलने के प्रयास से पैदा होती है।

रोगों की अवस्थाओं के विशिष्ट पैटर्न के वर्णन के लिए 1980 के उत्तरार्ध में जीव वैज्ञानिकों द्वारा उछाले गए 'विपरीत जिनेटिक्स' जैसे सुविचारित शब्द की ही तरह 'विपरीत अनुवांशिकता' भी एक विशिष्ट शब्द है। हम पर रोग दो रास्तों से होकर हमला कर सकते हैं। पहला तो उन कीटाणुओं द्वारा जो हमारे शरीर पर पांव पसारने के उद्देश्य से उसे संक्रमित करते हैं। ये सूक्ष्मजीव खुद के संवर्धन के लिए शरीर के संसाधनों का उपयोग करते हैं। उनमें से कुछ कीटाणु बतौर मेहमान इतना बढ़िया बर्ताव करते हैं कि वे हमारे शरीर की जैव रासायनिक और चयापचयी ज़रूरतों की पूर्ति करते हैं। इनको सिम्बिऑन्टस कहते हैं। शरीर ने उनकी इस उपयोगिता और महत्वपूर्ण भूमिका को समझना और उन्हें उचित महत्व देना सीख लिया है। और उन्हें बतौर मेहमान पनाह दी है।

दूसरे प्रकार के कीटाणु शरीर पर कब्ज़ा करके उन पर हावी हो जाते हैं। हालांकि इसका कोई अच्छा या खराब असर नहीं होता। ये सहप्रवासी पूरी कोशिका भी हो सकते हैं और डीएनए के कुछ अंश मात्र भी। ये वायरस भी हो सकते हैं जो या तो घर के मेहमानों जैसा व्यवहार करते हैं या फिर शरीर का एक हिस्सा भी बन जाते हैं जैसे डीएनए का हमारे जीनोम में शामिल होना। मनुष्य के जीनोम को विस्तार से पढ़ने के दौरान वैज्ञानिकों को यह आश्चर्यजनक बात पता चली कि हमारा जीनोम बहुत बड़ी तादाद में ऐसे मददगार परजीवी डीएनए अपने साथ लिए रहता है। डीएनए की इन प्रतिकृति कड़ियों (ट्रान्सपोसन्स) की भूमिका धीरे-धीरे समझ आ रही है।

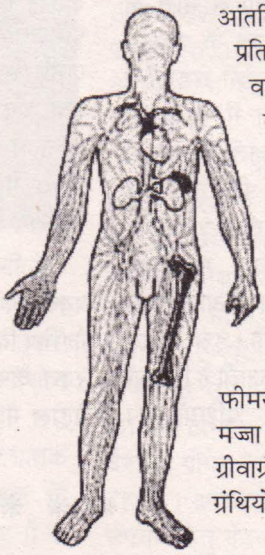

आंतरिक सुरक्षा: शरीर का प्रतिरक्षा तंत्र मुख्यत: लसिका वाहिकाओं और ग्रंथियों का एक नेटवर्क है जो एण्टीबॉडी-उत्पादक लिम्फोसाइट्स या श्वेत रक्त कोशिकाओं को खून के ज़रिए कोने-कोने तक पहुंचाता है। हालांकि लिम्फोसाइट्स फीमर जैसी लम्बी हड्डियों की मज्जा से जन्मती हैं लेकिन ग्रीवाग्रंथि, तिल्ली और लसिका ग्रंथियों में जमा रहती हैं।

रुमेटॉएड गठिया के कारण सूजा हाथ

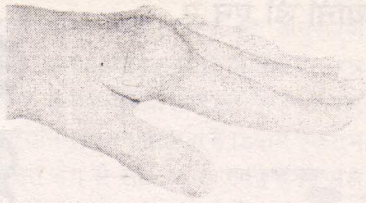

लगता है कि वे समय-समय पर अपनी स्थिति बदलते रहते हैं व नतीजे में हमें अनुवांशिक विविधताएं प्रदान करते हैं।

रोग कैसे होते हैं

इसके अलावा कुछ डीएनए के टुकड़े या जनन कोशिकाएं ऐसी भी होती हैं जो अनचाहे मेहमानों की तरह आती हैं। वे न तो तटस्थ होती हैं और न ही सहायक। लेकिन वे हमारे शरीर का उपयोग संसाधनों के ढेर के रूप में खुद के संवर्धन के लिए करती हैं। शरीर उनको पहचानकर उनसे कई तरह से अपने बचाव की कोशिश करता है। एक तरीका है आक्रमणकारी को जलाकर नष्ट कर देना या ऑक्सीकारक हमला करके उसको मिटा देना। दूसरा है उसे विशिष्ट कोशिका घेरों में बन्द करके उसके टुकड़े-टुकड़े कर देना। तीसरा उपाय है उस बाहरी पदार्थ पर कब्ज़ा करके प्रोटीन के एक समूह द्वारा उसका घेराव करना और उसे कचरे जैसे फेंक देना ताकि शरीर की साफ-सफाई करने वाली प्रणाली इसे साफ करती चले।

यह सब करने में शरीर को काफी मशक्कत करनी पड़ती है। ये तमाम तकलीफें बुखार, ठण्ड लगना, कमज़ोरी, डिहाईड्रेशन और अन्य लक्षणों के रूप में सामने आती हैं। कौन से कीटाणु के कारण रोग हुआ है, यह मालूम होने से उस पर काबू पाने और उससे छुटकारा पाने में मदद मिलती है। छुटकारा पाने के लिए इन जीवों के जीवनचक्र में विघ्न डालने वाली दवाओं के अलावा ऐसे टीकों को शरीर में इंजेक्ट किया जाता है जो प्रवेश के साथ ही जीवों को पहचानकर ऐसा प्रतिरक्षण तंत्र खड़ा कर दें जो उन कीटाणुओं के आते ही उन्हें बाहरी वस्तु मानकर खदेड़ दे।

बीमारियों का शरीर में प्रवेश का दूसरा रास्ता है स्वयं शरीर यानी सिस्टेमिक रूट। शरीर के चयांपचयी, परिसंचरण, परिवहन या शरीरक्रिया तंत्र में गड़बड़ियां इसका मुख्य कारण बनती हैं। इनमें से कुछ रोग गलत आहार लेने, धूम्रपान, नशा करने और ज़रूरत से ज़्यादा धूप में बैठने जैसी अस्वास्थ्यकर जीवन शैलियां अपनाने की वजह से होते हैं। लेकिन अगर रोग की जल्द पहचान हो जाए तो हमारे शरीर की स्वसुधारक प्रक्रिया की बदौलत ऐसी बहुत सी गलतियां सुधारी जा सकती हैं।

उपरोक्त कारणों के अलावा कुछ रोगों के कारण

रुमेटॉएड गठिया के एक कारक, स्वप्रतिरक्षण दोष पर एक नज़र

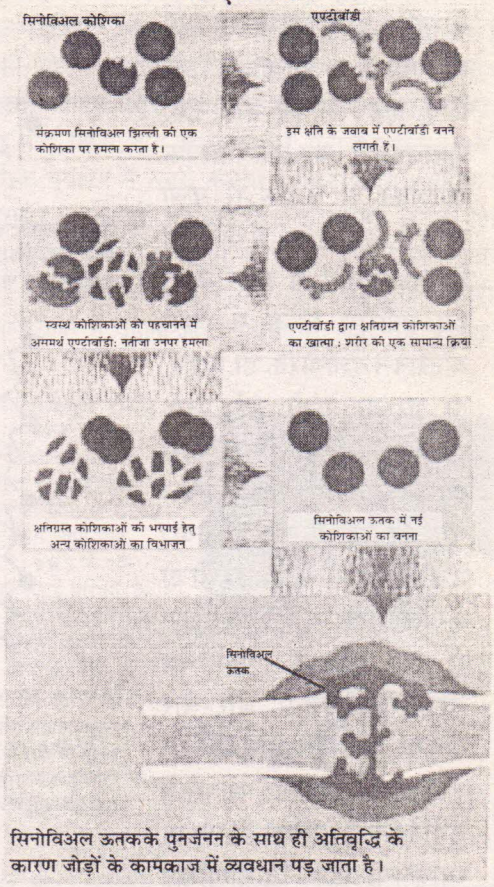

सिनोविअल ऊतक के पुनर्जनन के साथ ही अतिवृद्धि के कारण जोड़ों के कामकाज में व्यवधान पड़ जाता है।

कोशिकाओं पर मार : रुमेटॉएड गठिया होने का एक कारण है-स्वप्रतिरक्षण दोष। आम तौर पर एण्टीबॉडी केवल असामान्य कोशिकाओं या जीवित या मृत बाहरी तत्वों पर ही मार करती हैं। लेकिन स्वप्रतिरक्षण सिद्धांत के अनुसार सिनोवियल ऊतकों की एण्टीबॉडी कभी-कभार स्वस्थ कोशिकाओं पर भी हमला करती हैं। इस क्षति की प्रतिक्रिया स्वरूप कोशिकाओं का विभाजन शुरू हो जाता है। नतीजा होता है सूजन और जोड़ों की क्षति।

हमारा ब्लू प्रिंट यानी डी.एन.ए.

बीसवीं सदी के शुरू में यह स्पष्ट हो गया कि अनुवांशिकी के लिए एक रसायन डी.एन.ए. जवाबदेह है। यह पदार्थ प्रत्येक कोशिका के केंद्रक में पाया जाता है। 1952-53 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में काम करते हुए फ्रांसिस क्रिक व जेम्स वॉटसन ने दर्शाया कि डी.एन.ए. दो परस्पर गुंथी हुई पूरक शृंखलाओं से बना होता है। इस काम के लिए उन्हें नोबल पुरस्कार से भी नवाज़ा गया। उन्होंने यह भी बताया कि ये दो शृंखलाएं चार न्यूक्लियोटाइड्स से बनी होती हैं। यही चार न्यूक्लियोटाइड्स बार-बार दोहराए जाते हैं। आम तौर पर ऐसी दो-दो शृंखलाएं आपस में गुंथी रहती हैं। प्रत्येक डी.एन.ए. न्यूक्लियोटाइड निम्नलिखित घटकों से मिलकर बना होता है, डीआक्सी राइबोज़ शर्करा, एक फॉस्फोरिक अम्ल का अणु और एडीनीन, थाइमीन, सायटोसिन और गुआनीन नामक चार क्षारों में से कोई एक क्षार। दरअसल ये चार क्षार ही जीवन का कोड बनाते हैं। इनके क्रम से ही शारीरिक गुणधर्म तय होते हैं। फ्रांसिस क्रिक व जेम्स वॉटसन यह भी बता पाने में सफल रहे थे कि यदि एक शृंखला पर एडीनीन हो, तो उसके सम्मुख दूसरी शृंखला पर थाइमीन और सायटोसीन के सम्मुख गुआनीन ही हो सकता है। अनुमान है कि मानव जीनोम में लगभग 3.2 अरब न्यूक्लियोटाइड्स की जोड़ियां हैं। इनमें से अधिकांश भाग (लगभग 95 प्रतिशत) तो कचरा है। हमें नहीं पता कि यह कचरा शरीर में क्या काम करता है। ये जीन ही विभिन्न प्रोटीन्स के निर्माण के लिए ज़िम्मेदार है। किसी भी कोशिका में डी.एन.ए. कोशिका के कुल आयतन का 0.3 प्रतिशत होता है। किन्तु इसमें विपुल जानकारी संग्रहित होती है। पहले माना जाता था कि मनुष्य के डी.एन.ए. में करीबन एक लाख जीन्स होते हैं मगर ताज़ा अनुमान के मुताबिक यह संख्या 50,000 से भी कम है।

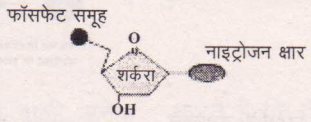

एक न्यूक्लियोटाइड : एक फॉसफेट समूह और एक नाइट्रोजन क्षार पांच कार्बन वाली शर्करा से जुड़ते हैं।

कुण्डलीनुमा डी.एन.ए.

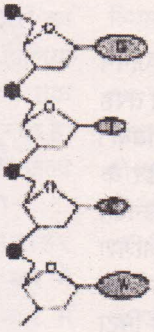

डी.एन.ए. की एक कड़ी का कुछ हिस्सा : न्यूक्लियोटाइड्स अपने शर्करा और फॉसफेट समूह के बीच के बंध से आपस में जुड़ते हैं। किनारे पर लगे चार नाइट्रोजन क्षार हैं एडीनीन, थाइमीन, सायटोसिन और गुआनीन

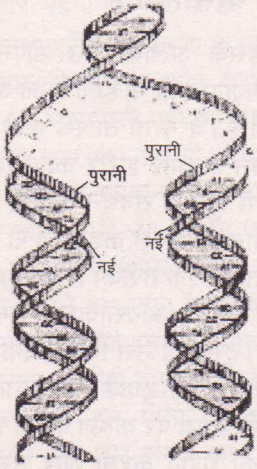

अपनी प्रतिकृति बनाता डी.एन.ए.

जीन से सम्बंधित भी होते हैं। हमारे शरीर में मौजूद जीन अभिव्यक्ति के एक बढ़िया नियमन तंत्र का अनुसरण करती हैं। कभी-कभी इस आंतरिक घड़ी या नियमन तंत्र में छेड़खानी की वजह से गड़बड़ियां होने लगती हैं। कैंसर भी ऐसी ही एक अनियमितता का नतीजा है। इसमें एकदम सामान्य जीन अनुचित ढंग से सक्रिय हो जाती हैं जिससे पैदा होने वाली स्थिति घातक हो सकती है।

अन्य प्रकार की जिनेटिक बीमारियां हमारी जीन में लिखे निर्देश के अक्षरों के क्रम में किसी गड़बड़ी के कारण होती हैं। चूंकि जीन मां-बाप से उनके बच्चों को मिलती हैं इसलिए ये जिनेटिक दोष और इनके परिणामस्वरूप होने वाली बीमारियां परिवार में अनुवांशिक होती हैं।

लगभग 60 साल पहले, जब हम जिनेटिक अणु के ढांचे और डीएनए के क्रम को भी समझ नहीं पाए थे, तब लीनियस पॉलिंग नाम के रसायनज्ञ ने एक अद्‌भुत खोज की। उन्होंने पाया कि अनुवांशिक बीमारी सिकल सेल एनीमिया जीन की एक खामी से होती है। यह खामी शरीर को रक्त प्रोटीन ग्लोबिन तैयार करने के लिए कहती है। तब से हम ने ऐसी एकल जीन को पहचानने में ज़बरदस्त प्रगति की है जो कई तरह की अनुवांशिक बीमारियों का कारण बनती हैं। कुछ उम्दा तरीके और तकनीकें ईजाद की गई हैं जो जल्द शिनाख्त और उपचार का मार्ग प्रशस्त कर रही हैं।

विपरीत जेनेटिक्स

अभी तक हम अधिकांश जिनेटिक बीमारियों की कारक जीन की सामान्य प्रक्रिया पूरी तरह से मालूम नहीं कर पाए हैं। बीमारी के आण्विक या जैवरासायनिक स्वभाव को जाने बगैर किसी जीन को उस बीमारी के लिए ज़िम्मेदार ठहराया जाना विपरीत जिनेटिक्स कहलाता है। ऐसी जीन का पूरा प्रभाव पता होने से भी पहले उसकी पहचान करना और उसे किसी बीमारी के लिए ज़िम्मेदार ठहराना, किसी रोग को पहचानने, उसके पूर्वानुमान और उनके प्रबंधन में मदद करता है। परम्परागत तरीके में बीमारी के लक्षणों का अध्ययन करते हुए उसके लिए ज़िम्मेदार जीन तक पहुंचा जाता था, यानी किसी सूचना की प्रतिक्रिया से उस सूचना तक पहुंचना। विपरीत जिनेटिक्स में पहले जीन श्रृंखला में खोट ढूंढा जाता है और फिर फीनोटाइप में झांका जाता है। रेस्ट्रिक्शन (आर.एफ.एल.पी.) और क्रोमोज़ोम जम्पिंग जैसे कुछेक तरीकों के ज़रिए डीएनए की कड़ियों की तुलना करना काफी आसान हो गया है। (आर.एफ.एल.पी. को सर्वप्रथम डेविड बोट्स्टीन ने 1980 में लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया। 1983 में बोस्टन के ही जेम्स गुसेला ने गुणसूत्रों में हंटिंग्टन रोग की जीन की पहचान हेतु सबसे पहले इसका इस्तेमाल किया। 1989 में जीनोम प्रोजेक्ट के फ्रांसिस कॉलिंस ने गुणसूत्रों द्वारा स्थान परिवर्तन को खोजा)। विपरीत जिनेटिक्स के ज़रिए न केवल बीमारी की शीघ्र व ज़्यादा विश्वसनीय शिनाख्त आसान हो गई बल्कि उस खराब जीन की जगह स्वस्थ जीन फिट करने की भी सम्भावना बढ़ गई। इसके लिए हमें जीन उपचार की उभरती नई शाखा का शुक्रगुज़ार होना होगा।

डेविड बोट्स्टीन और रोनाल्ड डब्ल्यू डेविस ने सबसे पहले इस तथ्य को प्रस्तुत किया कि पूरे मानव जीनोम में डी.एन.ए. के अनूठे कतरे बिखरे पड़े हैं जिनका इस्तेमाल जीन की पहचान हेतु निशानदेहकों के रूप में किया जा सकता है। रेस्ट्रिक्शन-फ्रेग्मेंट-लेंथ पॉलिमॉर्फिस्म (आर.एफ.एल.पी.) की यही अवधारणा मानव जीनोम मानचित्रण का आधार बनी।

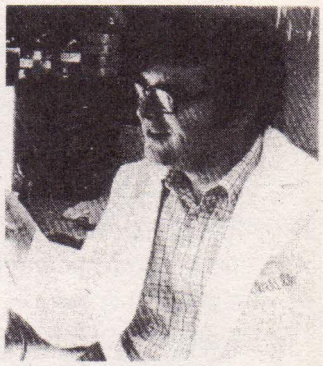

हार्वर्ड मेडिकल कॉलेज के आण्विक जीववैज्ञानिक जेम्स गुसेला को हंटिंग्टन रोग की जीन खोजने का काम सौंपा गया था। 1983 में एक वैनेज़ुएलाई परिवार के डी.एन.ए. के इस्तेमाल से उन्होंने अपनी टीम के साथ इस रोग के निशानदेहक को ढूंढ निकाला। आर.एफ.एल.पी. तकनीक का यह पहला इस्तेमाल था।

रोगों के एक वर्ग स्वप्रतिरक्षण दोष (ऑटोइम्यून डिसऑडर) को लम्बे समय से जिनेटिक स्वभाव का और अनुवांशिक माना जाता रहा है, यानी मां-बाप से बच्चों को मिलना। इस रोग में शरीर 'स्व' या 'अपने' और 'गैर' के बीच भेद कर पाने में असमर्थ रहता है। नतीजतन शरीर खुद के अणुओं और कोशिकाओं के विरुद्ध हो जाता है। इससे व्यक्ति को बेहद कष्ट होता है। इनमें से कुछ स्वप्रतिरक्षण दोष सोरिएसिस या चमड़ी पर निशान की तरह बहुत कमज़ोर हो सकते हैं। जबकि दूसरे अति तीक्ष्ण होते हैं जैसे संयोजक ऊतकों में सूजन (रुमेटॉएड गठिया), टाइप-1 या इन्सूलिन निर्भर मधुमेह, थाइरॉएड दोष, सिस्टेमिक ल्यूपस इरिथेमेटस या एस.एल.ई.। अवलोकन इशारा करते हैं कि एस.एल.ई. के पुरुषों की बजाए महिलाओं में होने की सम्भावना नौ गुना ज़्यादा होती है (हो सकता है यह इसके एक्स-गुणसूत्र से सम्बंधित होने की वजह से हो) और यह भी कि यह रोग काकेशाइयों और एंगलोसैक्सन लोगों की बनिस्बत चीनियों और अश्वेतों में ज़्यादा दिखाई देता है। इन अवलोकनों से कुछ-कुछ आभास होता है कि स्वप्रतिरक्षण दोष विरासत में मिलने वाले जेनेटिक्स रोग हो सकते हैं। आज इस वर्ग (स्वप्रतिरक्षण दोष) में 70 से ज़्यादा विविध रोग पहचाने जा चुके हैं।

अब हम उस आश्चर्य का ज़िक्र करते हैं जो ए.ए.ए.एस की बैठक में सामने आया और जिसे द *इकोनॉमिस्ट* ने अपने पन्नों पर जगह दी। जॉन हॉपकिंस विश्वविद्यालय के नोइल रॉस ने समरूप जुड़वाओं में इस

जीन का मानचित्रण

जीनोम अनुसंधान के प्रारंभिक दौर में वैज्ञानिक यह पता लगाने का प्रयास करते थे कि क्या किसी रोग से सम्बंधित जीन के साथ कोई प्रत्यक्ष लक्षण वाला जीन जुड़ा होता है- इसे निशानदेही जीन कहते हैं। यह निशानदेही जीन रोग के जीन के जितना करीब होगा, इन दोनों के साथ-साथ रहने की सम्भावना उतनी ही ज़्यादा होगी। यदि ये दूर-दूर हैं तो कोशिका विभाजन के समय होने वाली पुनर्मिश्रण की प्रक्रिया में ये अलग-अलग भी हो सकते हैं। इसी प्रकार से यह भी ज्ञात है कि गुणसूत्रों के सिरों पर उपस्थित जीन का पुनर्मिश्रण ज़्यादा मर्तबा होता है। कुल मिलाकर हम इस बात का आकलन कर सकते हैं कि निशानदेही जीन उपस्थित होने पर रोग सम्बंधी जीन के भी उपस्थित होने की सम्भावना कितनी है। इससे यह पता लग सकता है कि किसी व्यक्ति में निशानदेही जीन नज़र आए तो उसे सम्बंधित रोग होने की आशंका कितने प्रतिशत है।

अलबत्ता किसी जीन की स्थिति पता लगने से उसकी क्रियाविधि का कोई अंदाज़ नहीं लगता। इसके लिए उस जीन में क्षारों का सही क्रम मालूम होना ज़रूरी है क्योंकि क्षारों का क्रम ही यह बताता है कि वह जीन किस प्रोटीन का निर्माण करेगा। इस संदर्भ में एक पेंच यह है कि 95 प्रतिशत जीनोम तो कचरा डी.एन.ए. है। वास्तविक जीन्स तो इसके 5 प्रतिशत भाग में फैले हैं। दूसरी समस्या यह है कि इन जीन के प्रोटीन कोड के संकेत बिखरे हुए होते हैं। लिहाज़ा विचार यह आया कि क्यों न समस्त 3 अरब क्षारों का क्रम पता लगा लिया जाए। इस विचार को बल तब मिला जब यू.एस. की नेशनल अकादमी ऑफ साइंस ने इसे समर्थन दिया। इसके बाद 1990 में मानव जीनोम परियोजना प्रारंभ हुई। जीनोम के भौतिक मानचित्र में गुणसूत्र पर प्रत्येक जीन की स्थिति अन्य जीनों के सापेक्ष दर्शाई जाएगी तथा अंततः पूरे जीनोम में क्षार-क्रम पता लगाया जाएगा। जहां जेनेटिक्स मानचित्र जीन की भूमिका दर्शाएंगे वहीं दूसरी ओर क्षार-क्रम चित्र यह बताएगा कि कोई जीन काम कैसे करता है। दोहराव से बचने के लिए यूरोप के जिनेटिक वैज्ञानिकों ने 1998 में मानव जीनोम संगठन बना लिया था।

रोग की व्यापकता देखी। अगरचे यह रोग पूरी तरह जीन आधारित होता तो समरूप जुड़वाओं में से अगर एक को यह रोग होता तो दूसरा भी इससे बचा न रह सकता। टाइप-1 मधुमेह को लेकर उसके विश्लेषण के अनुसार उपरोक्त प्रवृत्ति केवल 5 प्रतिशत मामलों में देखी गई। रॉस का कहना है कि विरासत में हमें किसी खास स्व-प्रतिरक्षा रोग के प्रति जिनेटिक पूर्ववृत्ति नहीं मिलती बल्कि यह पूर्ववृत्ति स्वप्रतिरक्षा के अंतर्गत आने वाले तमाम 70 रोगों के प्रति होती है। अब इनमें से आपको कौन-सा रोग होगा यह संयोग पर निर्भर करेगा। आशय यह है कि हो सकता है दूसरे जुड़वां को मधुमेह न हो लेकिन एस.एल.ई., सोरिएसिस या गठिया ही हो जाए।

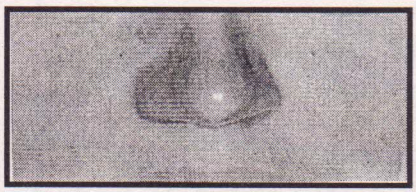

एस.एल.ई. रोग में गालों और नाक पर कुछ इस तरह से लाल चकत्ते पड़ जाते हैं।

विपरीत अनुवांशिकता

बोस्टन के मास जनरल हॉस्पीटल की डॉ. डेनिस फाउस्टमैन भी ऐसे ही कुछ नतीजों तक पहुंच पाईं। लेकिन ये नतीजे चूहों पर ही देखे जा सके। उन्होंने कई सारे चूहों में इस भारी तादात में आपस में प्रजनन करवाया कि चूहों की वह कॉलोनी जिनेटिक रूप में लगभग समान थी। ये जीव मधुमेह की किस्म-1 के प्रति काफी प्रवृत्त थे। लेकिन आश्चर्यजनक बात यह थी कि बावजूद इस जिनेटिक एकरूपता के सभी जीवों को यह रोग न हुआ। प्रत्येक 5 में से एक इसके बाद उसने स्वस्थ नर-मादा चूहों का प्रजनन करवाया और नवजात में रोग की व्यापकता देखी। हालांकि उन्हें मधुमेह तो न हुआ (जिसकी आशंका भी नहीं थी) लेकिन कुछ नवजात मादा शिशु चूहों में उस वक्त जोड़ों में दर्द (गठिया) होना पाया गया जब वे प्रजनन उम्र में पहुंचे और बच्चे पैदा करने हेतु तैयार हो गए थे। इससे यह विचार कि स्वप्रतिरक्षण जीन के एक ही समूह के विविध परिणाम हो सकते हैं, आकार लेने लगा था।

दिलचस्प बात यह है कि उन्होंने पाया कि इन स्वप्रतिरक्षण रोगों ने नर की अपेक्षा मादा चूहों को ज़्यादा अपने शिकंजे में कसा। एस.एल.ई., हाशिमोटो थाइरॉयडिटिस और अन्य स्वप्रतिरक्षण दोषों के मामले में इंसानों में भी ऐसे ही कुछ नतीजे देखे गए थे। महिलाओं पर इस रोग के हमले पुरुषों के मुकाबले कहीं ज़्यादा होते हैं। इससे यह विचार ने जन्म लिया कि स्वप्रतिरक्षण जिनेटिक अनुवांशिकता के अलावा 'वंशानुगतता' के कुछ अजब रूप से भी पनप सकती है। और यह अजब रूप है भ्रूण से मां को मिलने वाली विरासत। *द इकोनॉमिस्ट* लिखता है उलट विरासत के बतौर ''आप इसे अपने बच्चे से पा सकती हैं।''

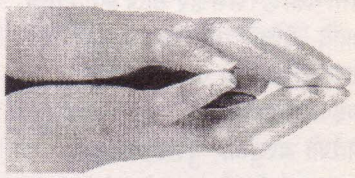

स्क्लीरोडर्मा में उंगलियों की त्वचा व हाथ कड़े और सूजे हुए हो सकते हैं जिससे उंगलियां सीधी करना मुश्किल हो जाता है।

दरअसल अब समझ में आया है कि भ्रूण की कोशिकाएं लीक हो कर मां के रक्त में मिल सकती हैं और वहां बरसों रह सकती हैं। नतीजतन मां का शरीर प्रतिरक्षण प्रतिक्रिया तैयार करने में जुट जाता है और यह गठिया, स्क्लीरोडर्मा और ऐसी ही अन्य स्वप्रतिरक्षण रोगों का आकार ले सकता है। स्क्लीरोडर्मा में त्वचा और दूसरे संयोजक ऊतक सख्त/कड़े हो जाते हैं जिससे बेहद परेशानियां होती हैं। प्रसव के बाद स्क्लीरोडर्मा से पीड़ित मां के खून में स्वस्थ मां की अपेक्षा घातक कोशिकाओं की संख्या 10 गुना ज़्यादा होती है। इससे मां के प्रतिरक्षा तंत्र में व्यवधान पैदा हो सकता है। यह कुछ-कुछ कृत्रिम अंगों के प्रत्यारोपण सरीखा मामला है जहां प्रतिरोपित ऊतकों के मेल न खाने की स्थिति में शरीर तीव्र प्रतिक्रिया ज़ाहिर करता है। प्रसव कभी भी आसान नहीं रहा है और अब इस नई खोज ने, कि आप खुद अपने खून और मांस से रोग पा सकते हैं, इस खतरे को फिर से रेखांकित कर दिया है। ***(स्रोत फीचर्स)***

★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★